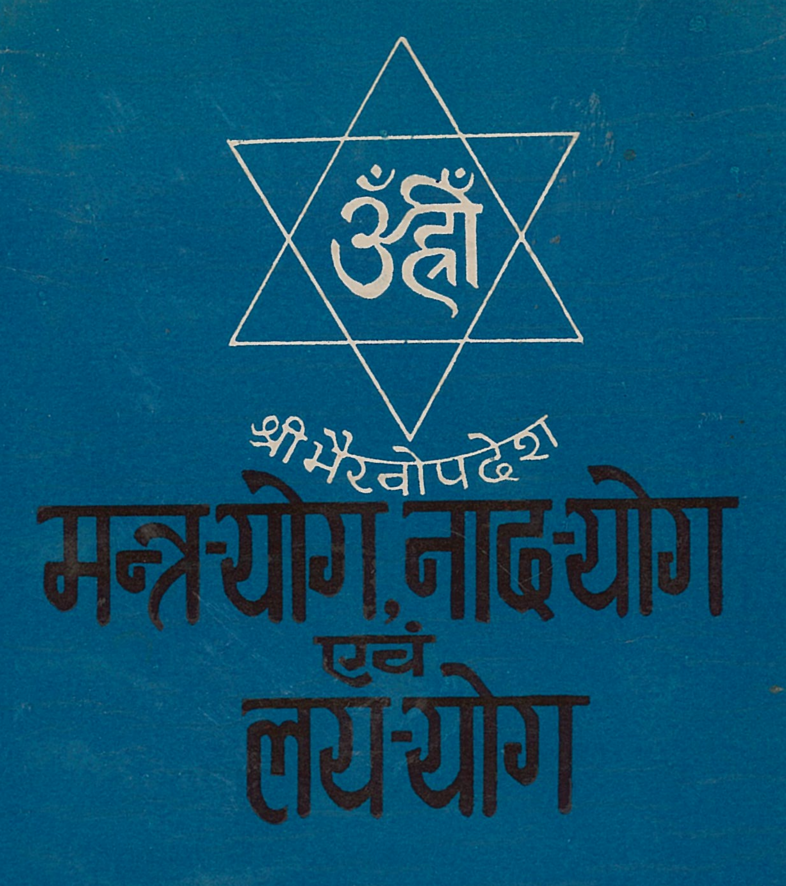


श्री भैरवोपदेश

मन्त्र-योग, नाद-योग एवं लय-योग

(सरल गुजराती भाषा एवं हिन्दी अनुवाद सहित)

गुप्तावतार बाबाश्री

'चण्डी' वर्ष ४६, विशिष्ट अङ्क—१०

नाद-योग
लय-योग
और
मन्त्र-योग

रचयिता

गुप्तावतार बाबाश्री

अनुवादक

'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल

सम्पादक एवं टिप्पणी-कर्त्ता

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

श्री ऋतशील शर्मा

प्रकाशक
कल्याण-मन्दिर प्रकाशन,
चण्डी कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग,
इलाहाबाद—२११००६

द्वितीय संस्करण : : फाल्गुन-पूर्णिमा, २०४४ वि०—३ मार्च, १९८८

मूल्य : ५-०० रु०

मुद्रक
परावाणी प्रेस,
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग, इलाहाबाद—२११००६

अ-नु-क्र-म

पुस्तक-परिचय

(मूल गुजराती संस्करण का संक्षिप्त अंश)

'श्रीभैरवोपदेश' में सबसे पहले 'निष्काम योग' का वर्णन किया गया है। 'निष्काम योग' की पूर्ति हेतु 'कर्म-संन्यास योग' का वर्णन किया गया। (ये दोनों अब पुस्तक-रूप में अलग से प्रकाशित हैं)।

'कर्म-संन्यास योग' के बाद 'अध्यात्म योग', 'क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ योग' एवं 'वैराग्य योग' का वर्णन किया गया है। (ये तीनों भी पुस्तक-रूप में अलग से प्रकाशित हैं)।

'वैराग्य योग' के बाद, इस उद्देश्य से कि मानवीय जीवन वासनाओं से मुक्त होकर उच्च स्थिति को प्राप्त करे, 'अन्तराग्नि-होत्र' एवं दिव्य-भाव सूचक 'विज्ञान-योग' का वर्णन हुआ। ('विज्ञान योग' और 'अन्तराग्नि-होत्र' ये दोनों भी पुस्तक-रूप में अलग से प्रकाशित हैं)।

'विज्ञान-योग' के बाद सोपान-रूप में राज-योग, हठ-योग, नाद-योग, मन्त्र-योग, लय-योग, ध्यान-योग और विचार-योग का वर्णन किया गया है। (ये सभी पुस्तक-रूप में अलग-अलग प्रकाशित हैं।)।

इस प्रकार इस छोटे से ग्रन्थ में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की ऐसी जगत्-हितकारी एक नई योजना उपस्थित की गई है, जिससे सरल दृष्टि, सरल बुद्धि और सरल स्वभाव के व्यक्तियों का उपकार हो सकता है।

—शङ्कराचार्य श्रीस्वामी त्रिविक्रम तीर्थ जी

लींबडी, सं० १९९१, नवम्बर १९३४

ग्रन्थ-कर्त्ता का परिचय

(मूल गुजराती संस्करण से उद्धृत)

यह सर्वथा स्वाभाविक है कि प्रस्तुत पुस्तक 'श्रीभैरवोपदेश' पढ़नेवालों को इसके रचयिता योगि-राज श्री मोतीलाल जी का परिचय, जिनको उनके परिचित 'बाबा श्री' के नाम से पहचानते हैं, जानने की जिज्ञासा हो। इन महात्मा जी का परिचय तीन-चार वर्ष पहले मुझे ब्रह्म-निष्ठ ब्रह्मचारी श्री नृसिंह शर्मा ने कराया था। उन्होंने कहा कि--"योग और मन्त्र-शास्त्र के अनुभव-सिद्ध ज्ञान को बतानेवाला एक व्यक्ति काशी में आया है और उसके दर्शन का लाभ अवश्य लेने योग्य है। मुझे उनके समागम से बहुत लाभ और सन्तोष हुआ है।"

ब्रह्मचारी जी सदैव तुले हुये शब्द ही बोलते थे। इससे मुझे उनकी बात से बाबाश्री के दर्शन का लाभ लेने की इच्छा हुई।

दैव-योग से मुझे बम्बई जाना पड़ा। उस समय शर्मा जी वहीं थे। उन्होंने मुझसे कहा कि—'बाबाश्री आज-कल यहाँ विराजमान हैं।'

मैं ब्रह्मचारी जी के साथ बाबाश्री के दर्शन करने गया। प्रथम दर्शन से ही उनके उपासकों में दिखनेवाले विरल सद्-गुणों ने मेरे अन्तःकरण को आकृष्ट किया। उनकी दयालुता और उदारता ने मुझे मुग्ध कर लिया और उनके अलौकिक ज्ञान से उनके पास रहने की इच्छा हुई, पर उस समय यह योग नहीं आया। मुझे कलकत्ते जाना पड़ा। वहाँ से वापस आने के बाद उनके साथ विशेष परिचय का योग आया।

तब मैंने जाना कि इस समय भारत में उनके जैसा मन्त्र-शास्त्र और योग का अनुभव-सिद्ध ज्ञाता भाग्य से ही कोई होगा। तभी मैंने 'श्रीभैरवोपदेश' पढ़ा और इसको प्रकाशित करने के लिए बाबाश्री से आग्रह किया। उन्होंने प्रसन्नता-पूर्वक अनुमति दे दी और इस प्रकार 'श्रीभैरवोपदेश' आज विश्व-नारायण के कर-कमलों में अर्पण करने का सुयोग प्राप्त हुआ।

'श्रीभैरवोपदेश' के पढ़ने के बाद इसमें संनिविष्ट विशाल ज्ञान और उसके कम-से-कम शब्दों में समझाने का सचोट विधान देखकर, मुझे उनके जीवन के सम्बन्ध में जानने की जिज्ञासा हुई और समय पाकर मैंने उनसे यह बात पूछी। उन्होंने मुझ पर दया करके अपने जीवन की कुछ रूप-रेखा सुनाई पर बीच में मैं बीमार पड़ गया। मेरी लिखी हुई जीवनी कहीं खो गई। अतः मैं जनता के समक्ष जिस रूप में चाहिये, उस रूप में उसे यहाँ नहीं रख सकता, इसका मुझे बहुत क्षोभ है। परन्तु इन महात्मा जी के जीवन का जो थोड़ा-बहुत मुझे स्मरण है, उससे मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि इनका जन्म, जीवन और कर्म अति दिव्य हैं।

जनता जब इनके शब्दों को पढ़ेगी, उन पर विचार करेगी और उसी रीति से व्यवहार करने का प्रयत्न करेगी, तभी इनके स्वरूप के विषय में मेरे जैसा ही अभिप्राय जाग्रत होगा।

इन महात्मा के ऊर्ध्वाम्नाय का जो ज्ञान मुझे मिला है, उससे मैं इन्हें सबसे श्रेष्ठ और दिव्यात्मा-रूप से जानता हूँ, मानता हूँ और इनकी वन्दना करने में अपनी महत्ता समझता हूँ।

(सम्पूर्ण जीवनी हेतु कृपया 'बाबाश्री चरितामृत' ग्रन्थ देखें)

—शङ्कराचार्य स्वामी श्री त्रिविक्रम तीर्थ जी

शब्द की व्याख्या

शब्द' आकाश तत्त्व का गुण है। शून्य में मूल गति में से उठनेवाली अमुकामुक गति-शक्तियों की विरुद्ध दिशाएँ पारस्परिक संघर्षण का कारण बन जाती हैं। इसी पारस्परिक संघर्षण से 'शब्द' उत्पन्न होता है।

गति-शक्ति-जनित मूल वायु में संघर्षण से उत्पन्न शब्द स्फुरित होकर जब पुनः गति में आता है, तब कर्ण को 'नाद'-भावना का बोध होता है।

शब्द द्वारा स्फुरित कर्ण-नाद भावना को मात्र प्रणव (ॐ) के अनुमान में बाह्य शब्द-रूप से प्रकट किया जा सकता है। यथा—

मूल-शब्द 'अ' कार गति में आने से 'उ'कार और प्रस्सरण के द्वारा लयात्मक विन्दु-भाव होकर अ+उ+म्=ॐ यह शब्द विद्वज्जगत् में 'प्रणव' के नाम से पहिचाना जाता है। अकार शब्द व्यापक होने से रजात्मक माना जाता है। कारण उसमें अन्य शब्द को उत्पन्न करने की शक्ति है। उकार में गति-मय स्थिरता का भाव सत्व की भावना व्यक्त करता है। उसमें शब्द के जीवन को पोषण देने की शक्ति स्फुरित होती है। गति-जनित शब्द प्रस्सरण हुये शब्द को कर्ण-मात्रा से पृथक् करता है। इसलिये उसे लयात्मक मानते हैं और उसमें तम दैवत की धारणा व्यक्त होती है। अतः इस मूल व्यापक शब्द को 'त्रिगुणात्मक शब्द-ब्रह्म' नाम से बताया गया है।

* * *

शब्द और मन का सम्बन्ध

इस प्रकार 'मन' और 'शब्द' का आन्तरिक सम्बन्ध है। शब्द उच्च-भाव द्वारा मन में जीवन-शक्ति का संचार करता है। शब्द में मन को स्तम्भित करने की शक्ति भी विद्यमान है। शब्द सम-भाव द्वारा मन में एकाग्रता को पैदा करता है और विषम-भाव द्वारा विकार को पैदा करता है।

'मन्त्र' में शब्दों का उच्च-भाव व समत्व-मय प्रवाह है। इसलिये उसमें मन को एकाग्र करने की या आनन्द देने की शक्ति वर्तमान है। 'मन्त्र' जिन उच्च भावनाओं से युक्त होता है, उन्हीं भावनाओं में मन खिचता है।

'मन' जीवन-शक्ति का गुण है। तन्मात्राएँ उसके शस्त्र हैं। बुद्धि धनुष है। विषय अर्थात् सुखेच्छा वेध-बिन्दु है। अहङ्कार प्रेरक है और चित्त उसका साक्षी है। चित्त में से जीवन-शक्ति स्फुरित होती है। उसी चिद्-वस्तु को जाग्रत चैतन्य-रूप से माना जाता है।

मानने की शक्ति को 'मन' कहते हैं। ऊपर कहा गया है कि गति-शक्ति-जनित मूल 'शब्द' आकाश में व्याप्त है। वह शब्द चिद्-शक्ति के आधार से, बुद्धि को धारण कर, मन में जीवन-शक्ति प्रेरित करता है और इसलिए मन तन्मात्राओं में खिचता है।

अतः शब्द में मन की विचित्र गति को स्तम्भित कर, शब्दज भावनावाले मार्ग में रोक देने की अथवा खिच जाने की शक्ति विद्यमान है।

* * *

'नाद' का अर्थ

(गुप्तावतार बाबाश्री के प्रवचनों के अनुसार)

नाद 'सूक्ष्म शब्द' है। स्थूल में सुनाई देनेवाले शब्द को हम लोग 'शब्द' कहते हैं परन्तु जो शब्द सूक्ष्म है, उसको 'वैखरी' कहते हैं।

जिस शब्द की गति नापी जा सके, उसे शब्द कहते हैं। जो शब्द सूक्ष्म है और जिसकी गति नापी न जा सके, वह वैखरी है, उसको 'नाद' या 'अनहद' कहते हैं।

'नाद' का भान मात्र 'मन' को ही होता है। इसलिये नाद को मन के विचारों का शब्द कह सकते हैं।

'नाद' से सूक्ष्म 'बिन्दु' है और बिन्दु से सूक्ष्म 'बीज' है। इससे भी सूक्ष्म 'गति' है। गति प्रकृति का स्वरूप है और उसके परे 'चिद्' है।

जब तक मन बाह्य विषयों में रमता है, तब तक वह अन्तर में स्थिर नहीं होता। मन को स्थिर करने के लिए साधक लोग कान में रुई और मोम की बनाई हुई मुद्रा डालते हैं तथा आँखें बन्द कर एकाग्र होने का प्रयत्न करते हैं। इस एकाग्रता से साधक को घटावकाश में 'नाद' सुनाई पड़ता है। इस 'नाद' में मन लग जाने से वह स्थिर हो जाता है अर्थात् मन बुद्धि में लय हो जाता है और व्यक्ति को चिदाभास हो जाता है।

नाद-योग के दो प्रकार हैं, उसके प्रथम ऋषि दुर्वासा हैं। राज-योग के भी दो प्रकार हैं, उसके प्रथम ऋषि कण्व हैं। हठ-योग के तीन प्रकार हैं, उसके प्रथम ऋषि श्री मत्स्येन्द्रनाथ हैं। ज्ञान-योग के दो प्रकार हैं, उसके प्रथम ऋषि भगवान्

नारद हैं। भक्ति-योग के नव प्रकार हैं और उसके प्रथम ऋषि प्रह्लाद हैं।

'योग' के बहुत से प्रकार हैं। किसी प्रकार का योग हो, परन्तु उसका अर्थ होता है—चित्त को लगाना। किसी भी वस्तु में 'मन' लग जाय, तो उसका स्वरूप बन जायगा।

यदि तुम्हें 'ईश्वर' या उसके भावों को जानना है, तो जो कुछ तुम जानते हो, उसको भूल जाग्रो। शम्स तवरेज ने मौलाना रूमी से यही कहा था। स्वामी रामतीर्थ से उनके शिष्यों ने जब पूछा कि आपके समान तीव्र बुद्धि कैसे हो सकती है? तब उन्होंने कहा कि—

जब तक तुम्हारे मन में—'मैं जानता हूँ, यह भान रहेगा, तब तक तुम ईश्वर को नहीं जान सकते ग्रौर वह तुम्हें नहीं मिल सकता।'

गुरु श्री भगवान् भर्तृहरि ने कहा है कि जब मैं बड़ी-बड़ी विद्यायें पढ़कर बाहर निकला, उस समय मुझे हाथी के समान मद था ग्रौर मैं यही मानता था कि मेरे समान संसार में जाननेवाला कोई नहीं है। थोड़े समय के बाद मुझे संसार का कुछ अनुभव हुआ, तब मुझे यह मालूम पड़ा कि मेरे जैसा मूर्ख कोई नहीं है ग्रौर जिस तरह बुखार उतर जाता है, वैसे ही मेरा मद उतर गया।

उपनिषद् कहता है कि जो व्यक्ति यह कहता है कि 'मैं जानता हूँ', वह समझ लो कि मूर्ख है। वह कुछ नहीं जानता। जो ऐसा न कहता हो, वह शायद कुछ जानता हो। इसलिये यदि ईश्वर को जानना है, तो जो कुछ तुम जानते हो, उसको भूल जाओ।

* * *

'मन्त्र-योग' का रहस्य

(गुप्तावतार बाबाश्री के प्रवचनों के आधार पर)

मानवीय देह में 'बुद्धि'-रूप पारदर्शक यन्त्र द्वारा उतरता हुआ, चिद्-काश-युक्त तथा सूक्ष्म तत्त्व-भाव निर्मित 'मन'—एक विचित्र रहस्य-मय वस्तु है।

योगानुभवी महा-व्यक्ति इस दिव्य पदार्थ 'मन' को स्थूल और सूक्ष्म जीवन का "सन्धि-विन्दु" कहते हैं। कई 'मन' को "जीवनांग तत्त्व" के नाम से जानते हैं और कई महा-व्यक्ति 'मन' का नाम "विचार-ग्रन्थि" बताते हैं।

'मन' बाह्य-दर्शन तथा व्यक्तित्व का मूल हेतु होने के कारण जीवन में प्रत्येक अलौकिक अथवा अभूतपूर्व शक्ति को उत्पन्न करनेवाला प्रधान यन्त्र है। कई अनुभवियों ने मन को वन्धन एवं मोक्ष दोनों का कारण कहा है—

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध-मोक्षयोः"

सूक्ष्म-तम और स्थूल-तम दो विन्दुओं के वीच विद्यमान, भिन्न-भिन्न भोग अथवा दृश्य-पटल में से प्रवाहित व्यक्ति का जीवन चिद्-काश के आधार पर, विवेक-बुद्धि रूप यन्त्र (दर्शन) में से, इस मनोमय रहस्य शक्ति के चारों ओर प्रकृति-गति द्वारा चली जाती हुई सत-रज-तम (प्रकृति के गुण) मय चिद्-ऊर्मियों और व्यक्ति के साथ बँधी हुई सञ्चित कर्म-ऊर्मियों का द्रष्टा वनता है।

जैसे रेडियो यन्त्र विद्युत् के रूप में शब्द को फिराकर, उसको पुनः उसी प्रकार के शब्द-रूप में बाहर निकालता है,

वैसे ही यह रहस्य-मय 'मन'––द्रष्टा से दर्शन के भाव ग्रहण कर, उनको नाना प्रकार के विचारों के रूप में बाहर निकालता है। इसीलिये मनोविज्ञान के वैज्ञानिकों ने इस (मन) रहस्य-पूर्ण तत्त्व का नाम "विचारों की गठड़ी" रक्खा होगा।

यह गूढ़, रहस्य-मय मनोतत्व जीव की अनेक शक्तियों का जनन-केन्द्र और प्रत्येक प्रकार के विचार-स्फुरण का मूल-यन्त्र होने के कारण—व्यक्ति के जीव की उन्नति का प्रधान हेतु है।

व्यक्ति के लिए दिव्य गुण-मय, उच्च सत्त्व-भाव में या तमो-भाव में चढ़ने-उतरने के लिये यह (मन) एक रहस्य-मय सीढ़ी है।

प्रत्येक व्यक्ति उन्नति और ग्रानन्द चाहता है। उस आनन्द की छाया, नाना प्रकार की भ्रम-मय प्रतिच्छाया—दर्शक 'मन' के चारों ग्रोर वहते हुए जल-रूप प्रकृति के प्रवाह में देखकर व्यक्ति प्रलोभन में पड़ जाता है। ग्रानन्द की छाया-प्रतिच्छाया पकड़ने के लिए व्यक्ति झाँव मारता है अर्थात् हवा में हाथ फैलाकर पाने की कोशिश करता है। लेकिन कुछ भी व्यक्ति के हाथ नहीं लगता।

आनन्द की छाया-प्रतिच्छाया के फेर में व्यक्ति नाना प्रकार के दुःख-सुखादि का अनुभव किया करता है और भोग, स्वार्थ तथा तज्जनित क्रिया से उत्पन्न कर्म-जाल में फँसकर प्रारब्ध, सञ्चित एवं क्रियमाण के तीन डोरे घिसने से—कटा करता है। इस सारी आपत्ति का कारण 'मन' है। अतएव 'मन' की साधना ही उपर्युक्त आपत्तियों पर विजय प्राप्त करने का एक-मात्र मार्ग है।

विचार किसी न किसी प्रकार की अंतर्भावना और अंतः-शब्द से सम्बन्ध रखता है। संस्कृत भाषा में विचार को--"मन्त्र" कहते हैं।

सद्-गुण-मय, सर्व-मय, तत्त्व-पर--ऐसे एक अनन्त-भाव-मय 'महा-प्रभु' का सतत चिन्तन कराने के लिये, साह्य-भूत अंतर-क्रिया को बतानेवाले विचार-लक्ष्य को--"मन्त्र" कहते हैं।

मनोचांचल्य के कारण अथवा जीवन-प्रवाह के क्षण-क्षण बदलते गुण से 'विचार'-लक्ष्य भी तीव्र गति-भाव-योग से समय-समय पर बदलता ही रहता है। इसीलिये अमुक एक लक्ष्य का विचार-प्रवाह स्थिर नहीं रह सकता। अतः जीव नये-नये दर्शन-लक्ष्य में बहता हुआ नई-नई कर्म-सृष्टि के जाल में फँस कर बराबर दुःख पाता है। अमुक जाति के विचार-प्रवाह को, इच्छित काल तक एक समान रीति से, स्थिर कर रखने की शक्ति के सम्पादन कराने के अभ्यास-क्रम को—'मन्त्र-योग का अभ्यास' कहते हैं।

उपर्युक्त अभ्यास-क्रम के अमुक सीमा-पर्यन्त सिद्ध होने के भाव को--'मन्त्र-योग की सिद्धि' कहते हैं। दूसरे शब्दों में सद्-विचार-युक्त चित्त से, 'महा-प्रभु' का सतत चिन्तन कर मन को उनके अनन्त गुणों में तन्मय करने के लक्ष्य को--'मन्त्र-सिद्धि' कहते हैं। इस तरह करने से साधक साध्य-मय हो जाता है। 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' के रङ्ग प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

इसी उच्च-तम विचार-शृङ्खला को 'योग' द्वारा निरोधित 'मन' में फैलाकर, एकानन्तात्म-भाव उत्पन्न कर उसमें विचार और उसके कारण मन को एकाग्र करने को 'योग-

सिद्धि' कहते हैं। दृढ़ विचार द्वारा उस अनन्त लक्ष्य को सदैव सम्मुख रखनेवाले अभ्यासी को 'जीवन-मुक्त' कहते हैं।

ये सब जीव-व्यक्तियों को श्रेय-मार्ग पर ले जानेवाले साधन हैं। इस तरह समझा जा सकता है कि युक्त रीति से 'मन्त्र' का जप व्यक्ति के कल्याण का एक हेतु है। दिव्य गुण-तत्त्व-चिन्तन और सतत मनन से 'मन्त्र' ध्याता को समय पर ध्येय-रूप बना देने में समर्थ होता है।

मन्त्रार्थं मन्त्र - चैतन्यं यो न जानाति साधकः।
शत-लक्ष प्रजप्तोऽपि मन्त्र-सिद्धिर्न जायते ॥

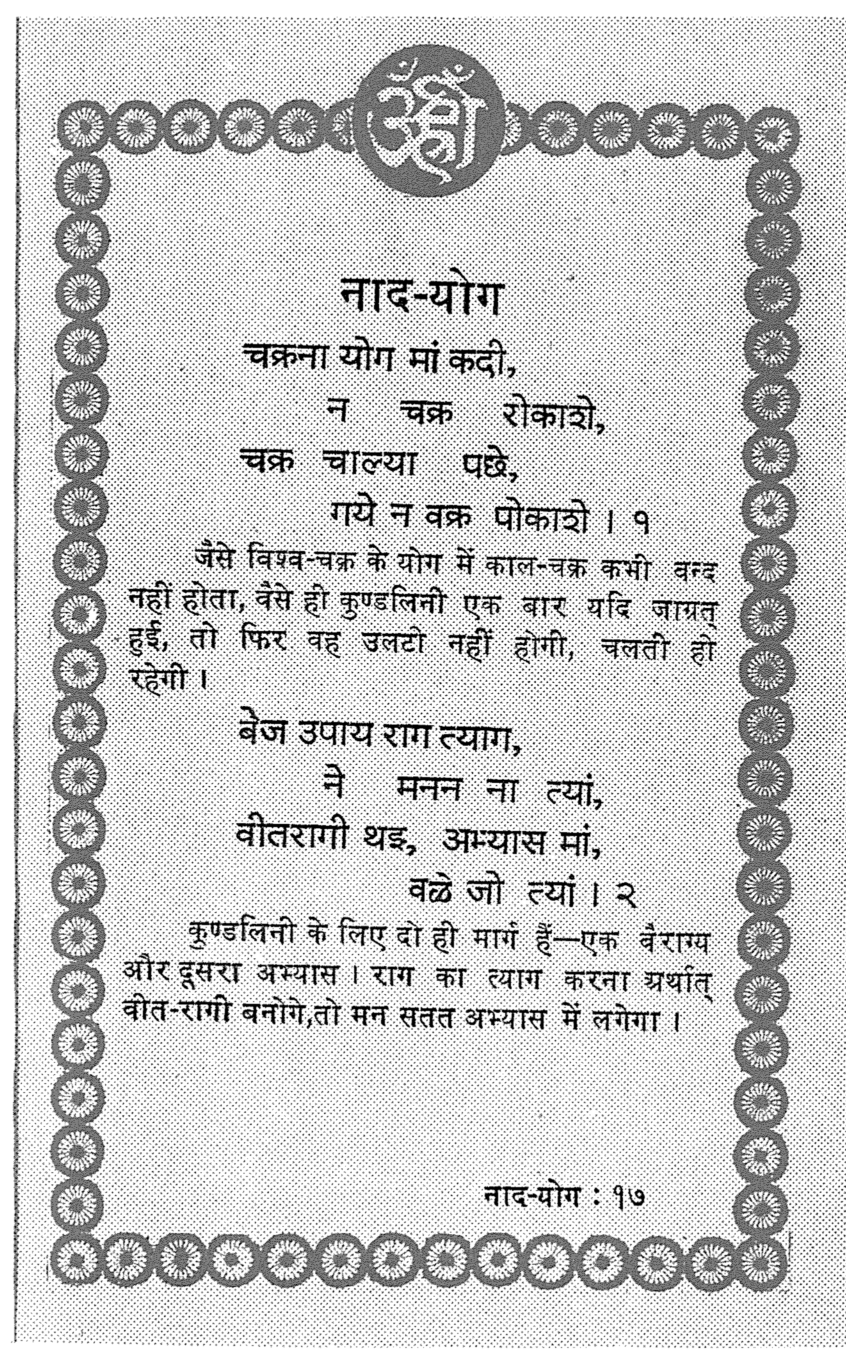
'मन्त्र' के शब्दों में तत्त्व-दैवत के भाव-सूत्र निहित रहते हैं। इन शब्दों को 'बीज' या 'मन्त्र-बीज' के नाम से पहचानते हैं।

इस तरह दिव्य बीज-युक्त 'मन्त्र' का भाव-मय गुण-तत्व के लक्ष्य से चिन्तन करने से साधक कल्याण पाता है। यही 'मन्त्र-रहस्य' है।

वर्तमान काल में 'मंत्र'-जप करनेवाले साधक प्रयत्न करने पर भी बार-बार विफल-श्रम होते हैं। इसका कारण यह है कि उनमें मार्ग-युक्त दिशा ग्रहण करने की शक्ति नहीं होती अथवा वे सत्य रहस्य से अनभिज्ञ होते हैं।

'मन्त्र-योग' द्वारा मार्ग ढूँढ़नेवाले प्रत्येक साधक को यह रहस्य समझने की बहुत आवश्यकता है। 'मन्त्र-योग' का 'राज-योग' से बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'राज-योग' और 'मन्त्र-योग' दोनों ही में विचार, धारणा और तीव्र मनन का प्राधान्य है। 'मन्त्र' का मनन 'राज-योग' से सम्बन्धित मनो-निवृत्ति का सरलतम उपाय है।

* * *



नाद-योग

चक्रना योग मां कदी,
न चक्र रोकाशे,
चक्र चाल्या पछे,
गये न वक्र पोकाशे । १

जैसे विश्व-चक्र के योग में काल-चक्र कभी बन्द नहीं होता, वैसे ही कुण्डलिनी एक बार यदि जाग्रत् हुई, तो फिर वह उलटी नहीं होगी, चलती ही रहेगी ।

बेज उपाय राग त्याग,
ने मनन ना त्यां,
वीतरागी थइ, अभ्यास मां,
वळे जो त्यां । २

कुण्डलिनी के लिए दो ही मार्ग हैं—एक वैराग्य और दूसरा अभ्यास । राग का त्याग करना अर्थात् वीत-रागी बनोगे,तो मन सतत अभ्यास में लगेगा ।





चित्त जो थाय,

एकता मरेल तो छूटे,

न तो लटकयाँ करे,

छूटे न आयु शत खूटे । ३

मन एकाग्र होकर ध्याता के साथ एकता का अनुभव करेगा, तो फिर सौ जन्म तक भी छूट नहीं सकेगा, बीच में ही लटका रहेगा ।

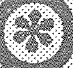
सांभळो चित्त,

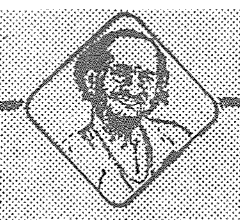
एकतानी आ सरल रीती,

अन्तराकाश शब्द,

मां परोवजे प्रीती । ४

अब चित्त की एकता करने को सरल रीति तुझसे कहता हूँ, तू उसे सुन । एकता करने के लिए, तू अन्तर के अवकाश अर्थात् घटावकाश में जो नाद सुनाई देता है, उसके साथ अपना मन प्रेम से लगा ।



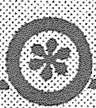


आसने सिद्धमां,
करीने योनिनी मुद्रा,
सांभळो कान दक्षमां,
रहेल जे मुद्रा । ५

सिद्धासन से बैठ कर, मूल-बन्ध कर उँगलियों से नाक, कान और मुख को बन्द करना। इस प्रकार बन्द किए हुए दाहने कान में शब्द सुनाई देगा।

शब्दमां चित्त वृत्तिनो,
निरोध थाशे तो,
योग सिद्धी तणो,
अलभ्य लाभ थाशे तो । ६

यदि उस सुनाई देनेवाले शब्द में चित्त-वृत्ति का निरोध हो जाएगा, तो साधक को योग-सिद्धि का अलभ्य लाभ प्राप्त होगा।



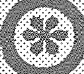


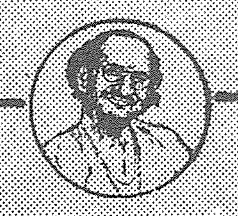
सांभळो घर्घरी,
विचित्र नाद पहले तो,
सूक्ष्म ते शब्द थाय,
पेसतां अन्तर लय तो । ७

सबसे प्रथम विचित्र 'घरघरी नाद' सुनाई देगा। यह नाद सूक्ष्म होकर अन्तर में लय होगा।

शब्द ते आदिमां,
जणाय नाद दरियानो,
मेघ, भेरी, झरा, झरीज,
नाद झरणानो । ८

फिर 'समुद्र' के शब्द जैसा नाद सुनाई देगा। फिर 'बादल', 'तुमड़ी' और बाद में बहते हुए 'झरने' के झर-झर शब्द जैसा नाद सुनाई पड़ेगा।





ते पछे मध्यमां,

धसीने सांभळो धिनकिट्,

धा धधा, वाजती मृदङ्ग,

धीन धा धिनकिट् । ९

फिर 'धनकिट् धा धधा धीनधा धिनकिट्'—ऐसा मृदङ्ग बजने का नाद सुनाई देगा ।

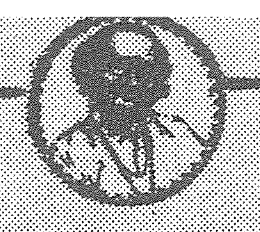
घण्ट, वीणा अने वंशी,

फरी भमरो गुंजे,

सूक्ष्ममां चित्त परोवाय,

नादना पुञ्जे । १०

बाद में 'घण्टे', 'वीणा', 'वंशी' और गूंजते हुये 'भ्रमर' के जैसा नाद, क्रमशः सूक्ष्म में चित्त लग जाने पर सुनाई देगा ।



आ जुओ उन्मनी,

जणाय वाजती भेरी,

चित्त, मन, बुद्धि, वृत्तिओ,

विचारमां भेरी । ११

जब 'तुंवड़ी' का शब्द सुनाई दे, तब उसमें मन, बुद्धि, चित्त और वृत्तियों को एकाग्र करने से 'उन्मनी अवस्था' प्राप्त होती है।

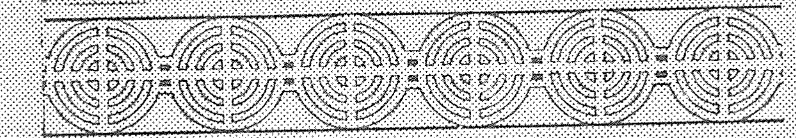
सर्व चिन्ता मुकी,

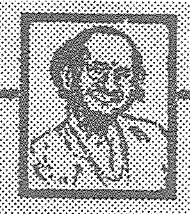
चिता अकर्म ने फोडी,

गाय अन्ततंणा ते,

गीत धर्मने छोडी । १२

ऐसा अभ्यास करनेवाले की सब चिन्ताएँ दूर होती है, उसकी अकर्मण्यता भी नष्ट हो जाती है और वह धर्म-हठ को छोड़कर अन्तर के गीत मे मस्त रहता है।





जागती कुण्डली,
तजी ने भोगना विषयो,
चित्त जो नाद मां रहे न,
भोगता विषयो । १३

साधक को जब यह स्थिति प्राप्त होती है, तब उसके भोग के सब विषय छूट जाते हैं और कुण्डलिनी जाग्रत् हो जाती है। नाद में चित्त के लगने से भोगों में मन नहीं लगता।

चित्त जो शब्द मां,
रमीने एकता पामे,
शून्य मां ब्रह्ना पदे,
जई शफा पामे । १४

जब चित्त शब्दों में रमकर एकता पा लेता है, तब वह सम्पूर्ण दुःखों और रोगों से छूटकर व्यापक लक्ष्य प्राप्त कर आनन्द-मय बन जाता है।

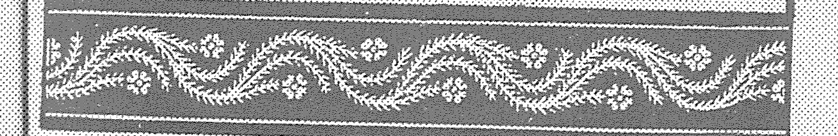


उन्मनी पामतां,
थशे ज काष्ठ-वत् देह,
शीत, उष्ण, हर्ष, शोकथी,
परे थशे देह । १५

जब नाद-योग के अभ्यासी की 'उन्मनी' जाग्रत् होती है, तब उसका शरीर काष्ठ की तरह हो जाता है और उसकी ऐसी स्थिति हो जाती है कि वह कुछ भी नहीं कर सकता। शीत-उष्ण, हर्ष-शोकादि से उसकी देह परे हो जाती है।

हूं लखूं तूं लखे,
न ते लखे आ छे शुं तो,
आवती ने जती कलम,
लखे न ते हूं तो । १६

उस आनन्द का वर्णन यदि कोई करना चाहे, तो नहीं कर सकता, केवल क़लम-द्वारा जो कुछ लिखा जाय, वही सच है।





शुं लख्यु ने लखुं,
हजो बनावशो गीता,
गाई ते तारजो तरो,
रहो अमृत पीता। १७

इतने पर भी क्या लिखा, क्या न लिखा, उसका साधक को भी पता नहीं रहता। तो भी उसको पढ़ोगे, तो यह एक बड़ी गीता बन गई होगी। उसको पढ़कर तुम और तुम्हारे साथी पार होकर अमृत-पायी बन जाएंगे।

मायया चकना,
बजारमां खवाशो मां,
हाय बिस्मिल्ल थता,
विचारमां समाशो मां। १८

माया के चक्र के बाजार में तुम अपने को बेच मत देना और जिन विचारों से अपना अस्तित्व गिर जाय, उनसे दूर रहना।



चित्त चिन्ता तणी,

चिता मुकी उकाळो ना,

नित्य ने काल शूं करे,

नडे उनाळो ना। १९

अपने मन को चिन्ता-रूपी चिता में रखकर मत उबालना। जो आत्मा नित्य है, उसका काल—मृत्यु कुछ नहीं कर सकता। उस पर शीत-उष्ण अर्थात् सर्दी-गर्मी का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

पाळजो पन्थ जो,

पुराण पाथरी गोती,

चित्त क्यांथी ठरे,

मळ न पांशरूं 'मोती'। २०

शान्ति-पूर्वक पुराने अनुभवानुसार ढूंढकर इस मार्ग का पालन न करने से तुझे शान्ति नहीं मिलेगी और प्रकाश भी नहीं दिखाई देगा।





लय-योग

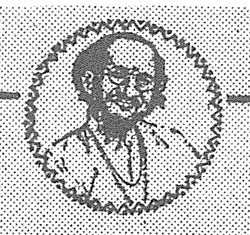
(अजपा जप प्रकार)

आधार मूल मां छे,
दल चारनूं कमल जे,
भूतत्व रंग पीला,
पत्रो अचल अमल जे। १

'आधार-चक्र' गुदा के ऊपर—बैठने के स्थान पर है। यहाँ चार दलवाले कमल का ध्यान करना। उसका तत्व 'भू' है, रङ्ग पीला है, सब पत्र मल-रहित, सुन्दर और स्थिर रहनेवाले हैं।

त्यां ध्यान मातृकाना,
'व' थी लखाय 'स' तक,
जे चार अक्षरो छे,
गण नाथ देव व्यापक। २

यहाँ मातृका का ध्यान होता है। उसके चार दलों में 'व' से 'स' तक चार अक्षर लिखे जाते हैं। इस चक्र के देवता श्री गणपति हैं।



ते स्थान त्याग मलनूं,

नाडी ईडा प्रकाशे,

जो पिङ्गला जडेली,

मध्ये रही स्वकाशे । ३

मल-विसर्जन करने के इस स्थान के ऊपर के भाग में 'ईडा' नाड़ी का प्रकाश है और मध्य में काश-सहित 'पिङ्गला' नाड़ी है ।

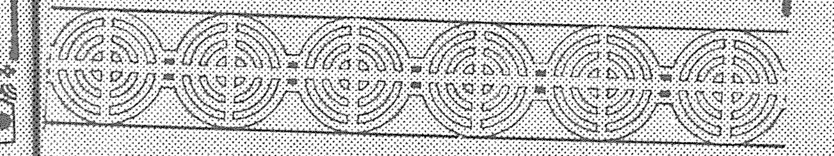
मल देश गामिनी जे,

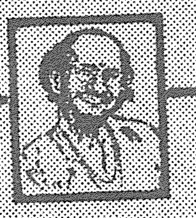
नाडी कहे सुषुम्ना,

ते तीर्थ पुण्यकारी,

छे तीर्थ राज जन्मा । ४

यहाँ मल-देश-गामिनी 'सुषुम्ना' नाड़ी का स्पर्श है । ऐसे उस स्थान में तीनों नाड़ियों के रहने से वह स्थान पुण्य-मय 'प्रयाग तीर्थ' कहा जाता है ।



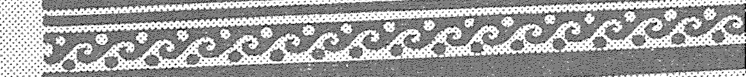


गङ्गा इडा सुषुम्ना,
भासे सरस्वतीना,
रूपे छे पिङ्गला जे,
यमुना त्रितीर्थ झीणा । ५

सूक्ष्म लक्ष्य से ईडा 'गङ्गा' नदी है, पिङ्गला 'यमुना' और सुषुम्ना 'सरस्वती' है । इस प्रकार मूलाधार को सूक्ष्म में त्रि-वेणी, त्रि-तीर्थ माना जाता है।

जे स्नान पुण्य प्राणी,
करतो अभेद भावे,
ते मोक्ष पामता ने,
भव रोग ना सतावे । ६

इस तीर्थ में स्थिर होकर जो पुण्यात्मा अभेद भाव से स्नान करता है, वह मोक्ष को पाता है और दुनियाँ के रोगादि उसको नहीं सताते ।



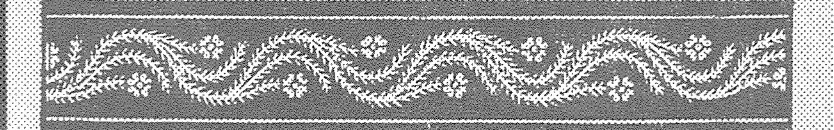


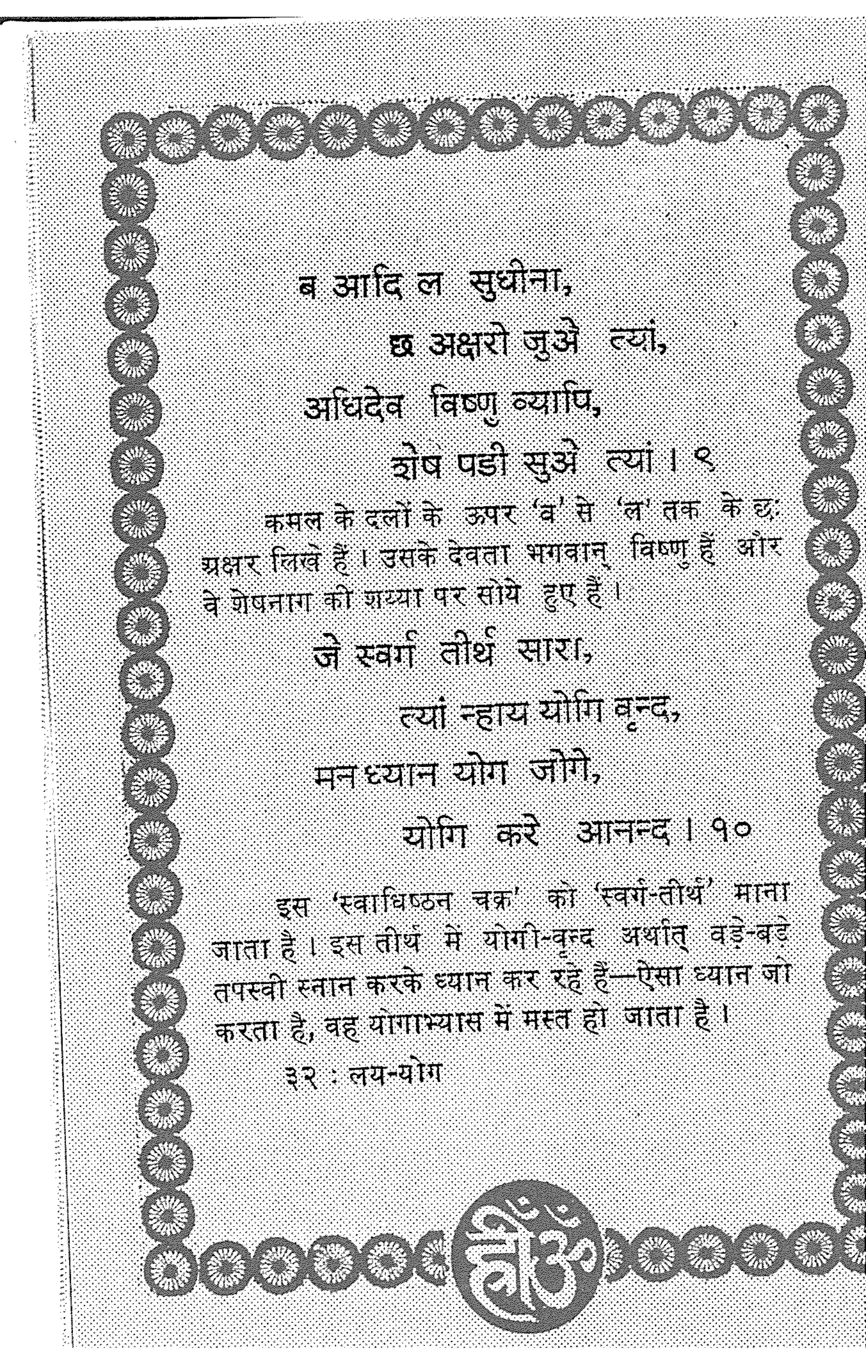
अजपा जपो छसो त्यां,
चित्तवृत्ति ने संभाळो,
सोऽहं ने हंसः मन्त्रो,
विश्राम पाम चाली । ७

यहाँ ऊपर कहे अनुसार ध्यान करते समय चित्त-वृत्ति को स्थिर रखकर 'सोहं हंसः' मन्त्र का छः सौ जप करने से शान्ति मिलती है ।

जे योनि-लिङ्ग देशे,
षट्-पत्र पद्म ध्याने,
ते स्वाधिष्ठान नामे,
जलतत्व श्वेत माने । ८

फिर मन को योनि-लिङ्ग स्थान पर ले जाना । वहाँ छः दल के कमल का ध्यान करना । उस स्थान को 'स्वाधिष्ठान चक्र' कहते हैं । उसका तत्व 'जल' है और रङ्ग श्वेत है ।





ब आदि ल सुधीना,

छ अक्षरो जुए त्यां,

अधिदेव विष्णु व्यापि,

शेष पडी सुए त्यां। ९

कमल के दलों के ऊपर 'व' से 'ल' तक के छः अक्षर लिखे हैं। उसके देवता भगवान् विष्णु हैं और वे शेषनाग की शय्या पर सोये हुए हैं।

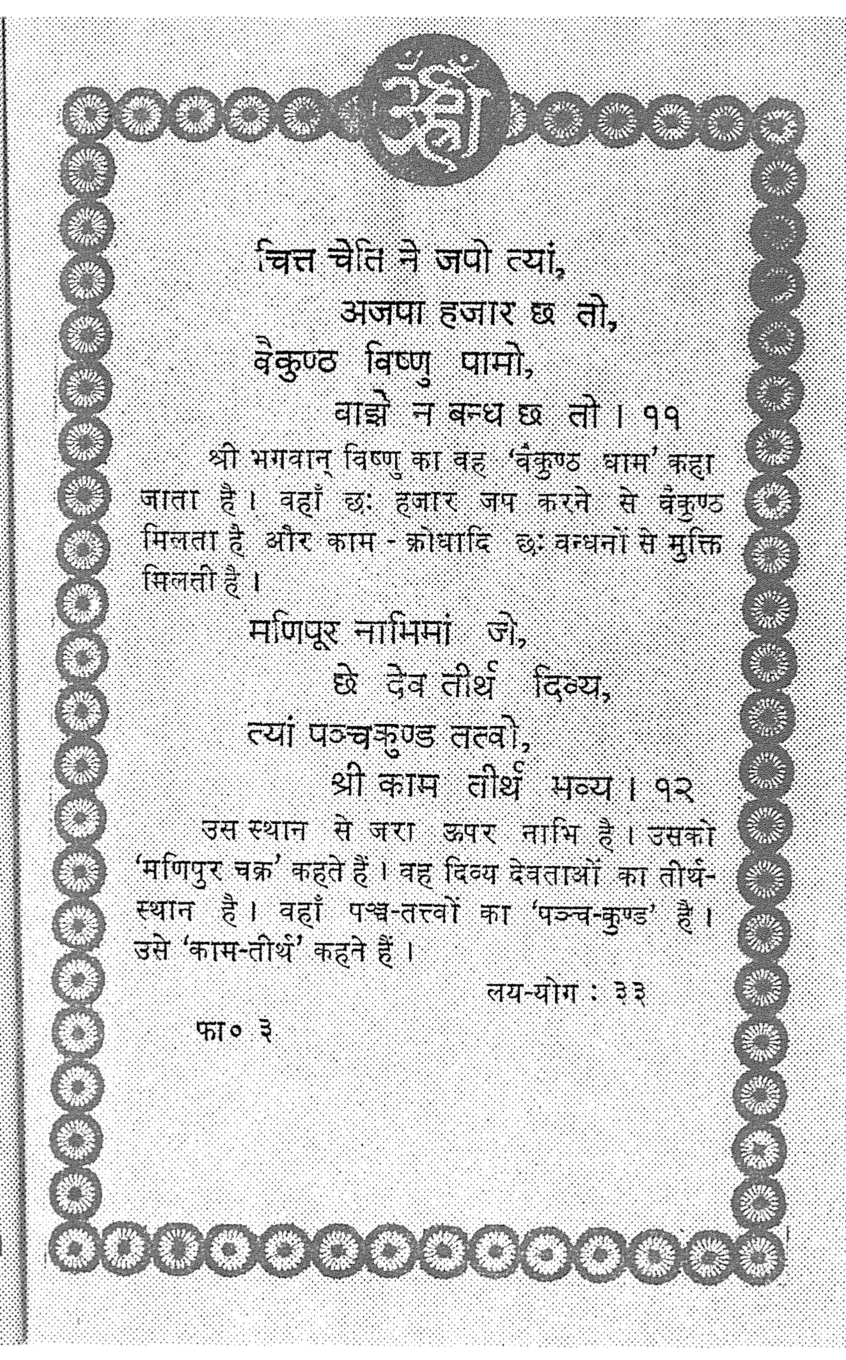
जे स्वर्ग तीर्थ सारा,

त्यां न्हाय योगि वृन्द,

मन ध्यान योग जोगे,

योगि करे आनन्द। १०

इस 'स्वाधिष्ठन चक्र' को 'स्वर्ग-तीर्थ' माना जाता है। इस तीर्थ में योगी-वृन्द अर्थात् बड़े-बड़े तपस्वी स्नान करके ध्यान कर रहे है—ऐसा ध्यान जो करता है, वह योगाभ्यास में मस्त हो जाता है।

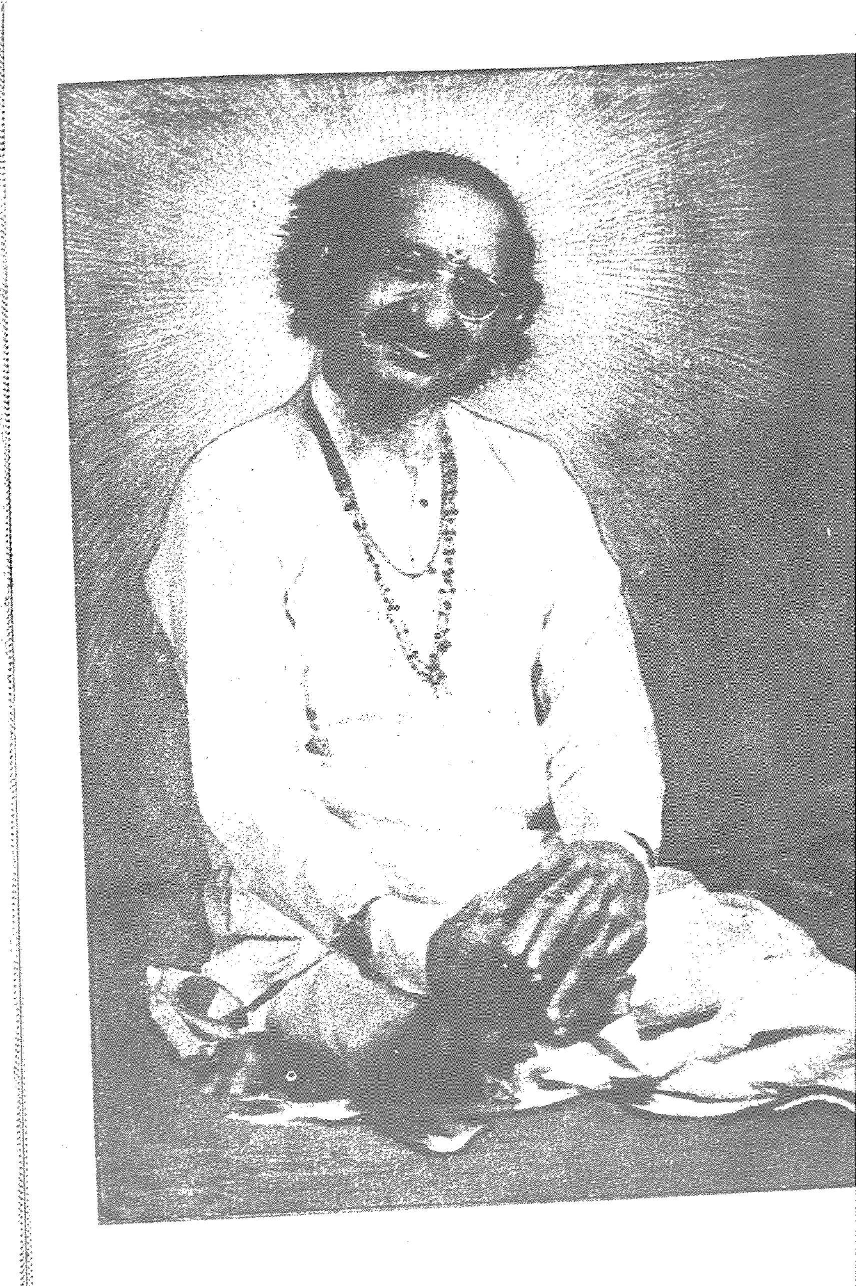


चित्त चेति ने जपो त्यां,
अजपा हजार छ तो,
वैकुण्ठ विष्णु पामो,
वाझे न बन्ध छ तो। ११

श्री भगवान् विष्णु का वह 'वैकुण्ठ धाम' कहा जाता है। वहाँ छः हजार जप करने से वैकुण्ठ मिलता है और काम - क्रोधादि छः बन्धनों से मुक्ति मिलती है।

मणिपूर नाभिमां जो,
छे देव तीर्थ दिव्य,
त्यां पञ्चकुण्ड तत्वो,
श्री काम तीर्थ भव्य। १२

उस स्थान से जरा ऊपर नाभि है। उसको 'मणिपुर चक्र' कहते हैं। वह दिव्य देवताओं का तीर्थ-स्थान है। वहाँ पञ्च-तत्वों का 'पञ्च-कुण्ड' है। उसे 'काम-तीर्थ' कहते हैं।



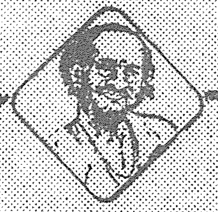


छे तत्व अग्नि शक्ति,
गति स्पन्द नो विकास,
जो रक्त लाल आभा,
झळके झरे प्रकाश। १३

उसका अग्नि तत्त्व है, शक्ति क्रिया है और स्पन्द विकास है। लाल आभा का रङ्ग है, उसमें से प्रकाश झलक रहा है।

'ड' थी ते 'फ' सुधीना,
दश पांदडे कमळनां,
दश अक्षरो विराजे,
दीपेज लाल दलनां। १४

वहाँ लाल रङ्ग का दस दलवाला कमल है। उसके ऊपर 'ड' से 'फ' तक के दस अक्षर लिखे हैं।



जे विश्व शक्ति माया,

अधि देवता गणाय,

अजपा हजार छ ना

जप जोते त्यां जणाय । १५

इस चक्र की देवता विश्व-शक्ति श्री महा-माया हैं। यहाँ नित्य छः हजार जप करने से ज्योति दिखती है।

हृतचक्र बार दलनूं,

शोभे कमल अकल नूं;

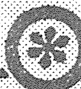
छे नाम ते अनाहत,

जो जल रवी अमल नूं ।१६

फिर हृदय के ऊपर बारह पंखुड़ियों का, न समझा जा सके, ऐसे कमल का ध्यान करना। उसका नाम 'अनाहत चक्र' है। वह सूर्य की तरह तेजस्वी है।









आदित्य तीर्थ पावन,

न्हाता न ते अपावन,

झरणो प्रकाश भावन,

मन शुद्धि श्रोत श्रावन। १७

इस चक्र को 'आदित्य तीर्थ' कहते हैं। इसमें स्नान करनेवाले पावन हो जाते हैं। इसमें से प्रकाश-मय झरना निकलता है। उस झरने में स्नान करने से मन शुद्ध होता है।

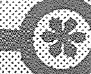
रंगो गुलाब रातू,

गुलमस्त पान पातू,

अक्षर गणाय 'क' थी,

'ठ' बार सार गातू। १८

उसका रङ्ग फूलों की मस्ती को पान पिलाता लाल गुलाब जैसा है। उसके दलों के ऊपर 'क' से 'ठ' तक बारह अक्षर लिखे हैं।



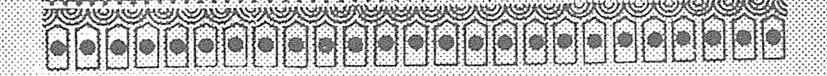


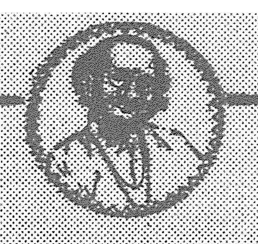
त्यां तत्व बे जणाशे,
वायु अनल गणाशे,
अधिदेव काल स्वामी,
प्राणो तणो जणाशे । १९

हृत्-चक्र में दो तत्व हैं—'वायु' और 'अग्नि' (नाभि-चक्र से ऊपर चढ़ता हुआ अग्नि-तत्व और कण्ठ-चक्र से नीचे उतरता हुआ वायु-तत्व। इस अनुक्रम से लाल और धूम्र रङ्ग मिलकर गुलाबी रङ्ग होता है)। प्राणों का स्वामी काल उसका अधिदैवत है।

जो मन्त्र 'हंस सोऽहं',
अजपा जपाय अन्तर,
तो काल ना सतावे,
नित छः हजार मन्तर । २०

उस स्थान पर प्रतिदिन 'सोहं हंसः' का छः हजार बार जप करने से काल नहीं सताता।



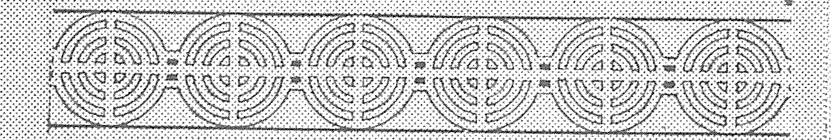


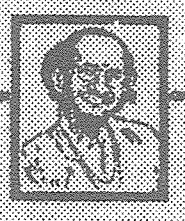
सत्तीर्थ आठ जेमां,
छे ते विशुद्ध चक्र,
त्यां सोल पांदडां नो,
जो पद्म कण्ठ चक्र । २१

उसके ऊपर 'कण्ठ-चक्र' है। उसको 'विशुद्ध-चक्र' कहते हैं। उसमें आठ तीर्थ हैं। सोलह पंखुड़ियों का कमल है।

स्वर सोळ त्यां लखाया,
पूरव पछे क्रमेथी,
आ ध्यान लक्ष्य जोवूं,
अन्तर अडी क्रमेथी । २२

कमल के दलों के ऊपर 'अ, आ, इ, ई' से 'अः' तक के सोलह स्वर क्रम से लिखे हैं। इस प्रकार अन्तर में एक के बाद एक का ध्यान करते हुये जप करते जाना और आगे बढ़ते जाना।





रंगेल धूम तममां,
अधिदेव जीव आतम,
जो न्हाय धारणाथी,
छूटे करम अनातम । २३

इस चक्र का रङ्ग धूम्र है, अधिदेवता जीवात्मा है। इन आठ तीर्थों में स्नान करने से बुरे कर्मों का नाश होता है।

अजपा सहस्त्र बे जो,
जप चक्र ध्यान करतो,
तो छूट छेक भवना,
फेरा भमेर फरतो । २४

वहाँ ध्यान कर प्रतिदिन दो हजार अजपा जप करने से इस विश्व के जन्म-मरण से मुक्ति मिलती है।



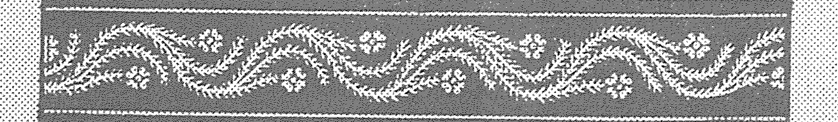


भ्रूमध्य चक्र बे दल,
आज्ञा कमल विगतमल,
काली सरे कलाधर,
रेडे अमी अमल जल । २५

कण्ठ के ऊपर 'भृकुटि-चक्र' है, जिसे 'आज्ञा चक्र' कहते हैं। मन को वहाँ ले जाना। वहाँ दो पंखुड़ियों का सुन्दर मल-रहित कमल है। उसमें भगवान् श्री कृष्ण या श्री भगवती काली मां का कृष्ण तालाब है। वह तीर्थ है। उस सरोवर में चन्द्रमा अमृत-रूपी निर्मल जल डाल रहा है।

जे न्हाय ते मरे ना,
जन्मे न चक्र आवी,
छूटे महा भयोथी,
फेरे न कर्म चावी। २६

उस सरोवर में स्नान करनेवाला जन्म-मरण के फेरे और महा-भय से छूट जाता है। कर्म उसके मन को चाभी नहीं दे सकता।





रंगेल श्याम शशिना,
रंगे प्रभा प्रकाशे,
जो देख शुक्ल भासे,
भीतर अनन्त वासे। २७

वहाँ श्याम रंग के चन्द्रमा-जैसी प्रभा प्रकाशित होती है, जो देखने में ऊपर से शुक्ल है और अन्तर में श्याम है।

जमणे 'ह' कार देखे,
वापे 'क्ष' कार लेखे,
बे तत्त्व बोधना जो,
अन्दर न कार देखे। २८

'भृकुटि-चक्र' में बाईं ओर के दल के ऊपर 'क्ष'-कार और दाहिनी ओर के दल के ऊपर 'ह'कार शब्द लिखा है। वे दोनों बोधार्थ विज्ञान के तत्त्व हैं। इसमें शून्य भरा हुआ है अर्थात् कोई तत्त्व नहीं है।





अजपा सहस्त्र जापे,

विण्टाय ते न पापे,

अधिदेव श्री गुरू जे,

छोडे कुबन्ध श्रापे। २९

उन दोनों अक्षरों का चैतन्य-युक्त ध्यान करते हुये नित्य एक हजार जप करने से पाप नहीं लगता। उस चक्र के अधिदेवता श्री गुरु हैं, जो साधक के शाप इत्यादि को तोड़ देते हैं।

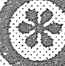
आ रीत जे जपे नित,

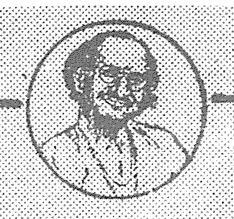
अजपा हजार वीस,

जोडो छ सो हजार,

त्यां थाय एकवीस। ३०

इस रीति से प्रतिदिन सब मिलाकर इक्कीस हजार छः सौ जप करनेवाला साधक—



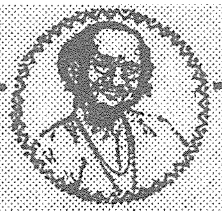


ते पामतां निवृत्ति,
चित्त वृत्तिनी तिजोरी,
'मोती' जणाय देखं,
ते आर-पार चोरी । ३१

जगत् की प्रवृत्ति होकर विश्व की तिजोरी में वर्तमान मोती (प्रकाश) को आर-पार देखता है ।

लय योग चित्त जेथी,
लय कोटि कर्म पामे,
ते निष्कली प्रभून्,
ज्यां ध्यान चित्त पामे । ३२

लय-योग के करने से मन में रहे हुये अनेक कर्म-बीजों का नाश होता है, और न जान सके, ऐसे प्रभु का ध्यान मन में स्थिर होता है ।

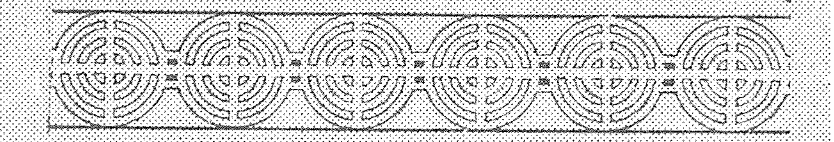


खाये पिये रमे ने,
चाले सुषुप्ति सपने,
जे एक ब्रह्म ध्याये,
बीजा तणूं न सपने। ३३

लय-योग के करने से जिसका चित्त एकाग्र हो जाता है, उसे खाने-पीने और खेलने में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती। स्वप्न में भी उसे सुषुप्ति-अवस्था का भान रहता है। एक-मात्र ब्रह्म का ही ध्यान रहता है, और किसी वस्तु का उसे स्वप्न में भी ध्यान नहीं होता।

छे ध्यान जीवने जे,
ते तेजमां समाय,
लय-योग-विश्व विभूमां,
अन्तर जई समाय। ३४

जो जीव मन में जिस चीज का ध्यान करता है, वह उसी का स्वरूप बन जाता है। इसी तरह लय-योग का अभ्यास करनेवाला विश्व-विभु के अन्तर में समा जाता है।





मन्त्र-योग

जो मन्त्र मातृकाथी,
आ शब्द बीज जागे,
ते तत्त्व गण दावे,
निज सत्व अंग जागे । १

मन्त्र के साथ मातृका का जप करने से शब्द-बीज का विस्फोट होता है, और उसके तत्त्व का ध्यान करके तू तत्त्व-दैवत को अपने सम्मुख कर सकता है।

ने ध्येय देवताना,
मनमां गुणो जगाडे,
मन ते जपी गुणोनी,
छवी रूप सद्य पाडे । २

जिस देवता का तुम ध्यान करोगे, उसी देवता के गुण तुम्हारे मन में उत्पन्न होंगे । इस प्रकार सब गुण तुम्हारे मन में उतरते-उतरते एक दिन तुममें आ जायेंगे और तुम भी ईश्वर हो जाओगे । इसलिये तुम मन में उन गुणों को उत्पन्न करो ।

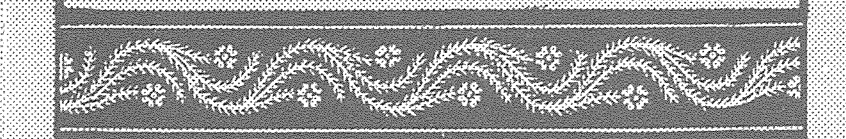


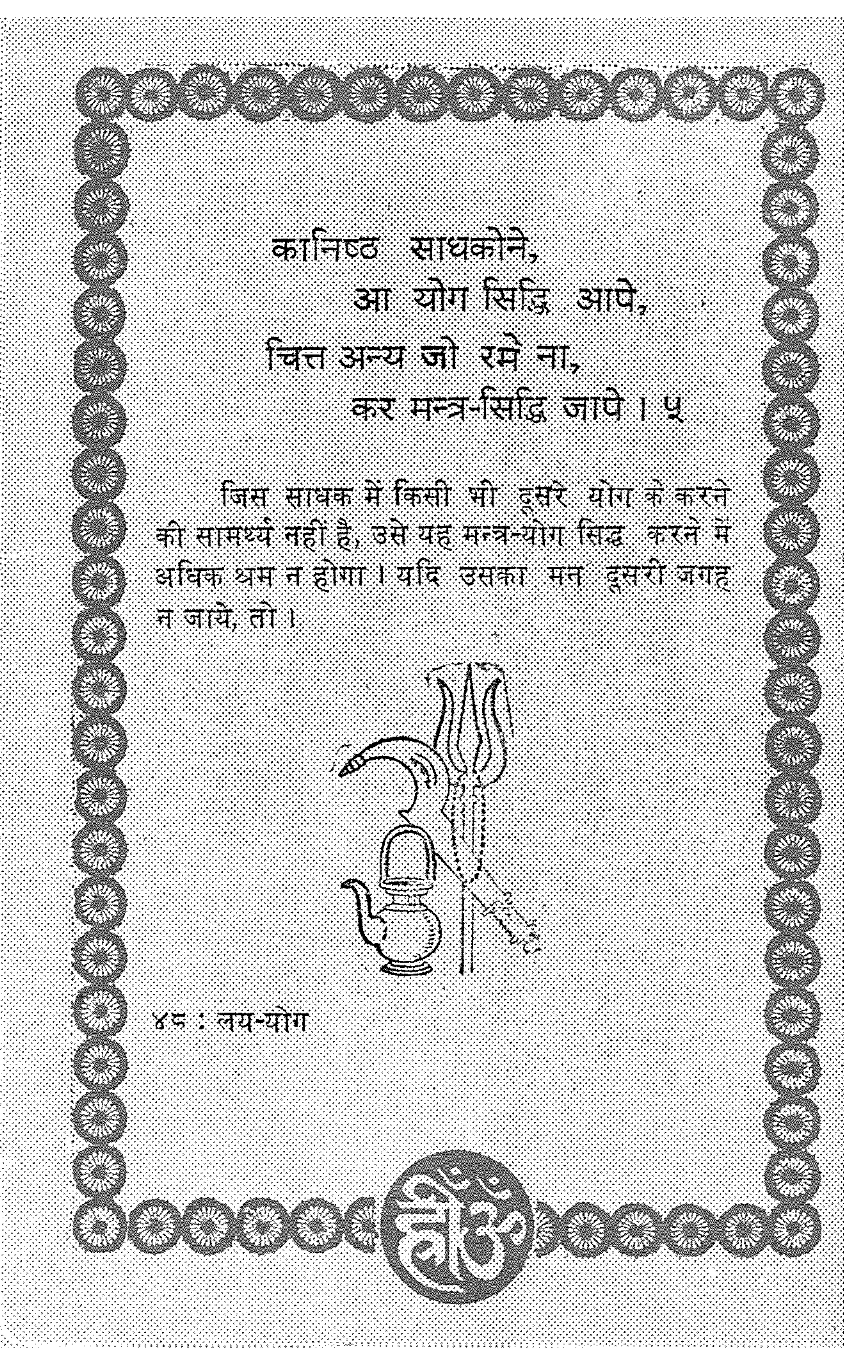
अणिमादि सिद्धि-क्रम जो,
भोगे न ज्ञान पामे,
जेथी ठरी सुठौरे,
ले स्वाद मस्त जामे। ३

जिन्हें अणिमा आदि अष्ट-सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, वे यदि उनको भोगेंगे, तो गिर जायेंगे, यदि न भोगेंगे, तो उन्हें ज्ञान प्राप्त हो जायेगा। ज्ञान उत्पन्न होने पर अच्छे स्थान में बैठकर, वे उसका मस्त होकर स्वाद लेंगे।

आ मन्त्र-योगने ज,
सत्साधको वधारे,
ते मुक्त मुक्ति पामे,
गुरूनी कृपा करारे। ४

जो सत्-साधक इस मन्त्र-योग को उचित रीति से करता है और इन सिद्धियों में फँसता नहीं, वह इस विश्व में गुरु की कृपा (किनारे को पाकर) से अवश्य ही मुक्त हो जाता है।





कनिष्ठ साधकोने,
आ योग सिद्धि आपे,
चित्त अन्य जो रमे ना,
कर मन्त्र-सिद्धि जापे । ५

जिस साधक में किसी भी दूसरे योग के करने की सामर्थ्य नहीं है, उसे यह मन्त्र-योग सिद्ध करने में अधिक श्रम न होगा । यदि उसका मन दूसरी जगह न जाये, तो ।